ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

जैन परम्परा मे कुलकर

मीना जैन रिसर्च स्कालर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

कुलकर व्यवस्था –

भोगभूमि के अंतिम चरण में भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों के आर्य खण्डो की भूमि पर अत्यनत युगान्तरकारी प्राकृति एवं जैविक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों से अनभिज्ञ एवं भयभीत मानव जाति को, इन परिवर्तनों के अनुकूल समंजित होने का उपदेश देनेवाले कुछ महापुरूषों का जन्म तृतीय काल के अंत में भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में होता है, इन्हें जैनग्रन्थों में मुख्यरूप से कुलकर कहकर पुकारा है, इनके लिये हिन्दु पुराणों में मुन शब्द का प्रयोग मिलता है। जैन आगमों में कहा है कि जब तृतीय काल समाप्ति में पल्य का आइवाँ भाग शेष रहता है, तब क्रम से 14 कुलकर उत्पन्न होते हैं।[1]

सुषमादुषमा नामक तीसरा काल समाप्त होने में जब पल्य का आठवाँ भाग प्रमाण काल श्शेष रह गया तथा कल्पवृक्ष भी क्रम–क्रम से कम होने लगे तब इस भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा में गंगा और सिन्धु नदियों के बीच आर्यखण्ड में 14 कुलकरों की उत्पत्ति हुई। ये प्रजा की जीवन के उपाय का मनन करने अर्थात् जानने से मनु तथा आर्य पुरूषों के कुलों को धारण करने से कुलधर कहलाते थे तथा युग के आदि में होने से ये युगादिपुरूष भी कहे जाते थे। आचार्य यतिवृषभ कहते हैं – ये सब कुलों के धारण करने से कुलध रनाम से ओर कुलों के करने में कुशल होने से कुलकर नाम से भी लोग में प्रसिद्ध हैं।[2] वे इनकी मनुसंज्ञा की सार्थकता बताते हुये कहते हैं – ये अपने अवधिज्ञान एवं जातिसमरण ज्ञान से भोगभूमिज मनुष्यों को जीवन के उपाय बताते हैं, इसलिये मुनिन्द्रों द्वारा मनु कहे जाते हैं।115 स्थानांग सूत्र की वृत्ति में आचार्य अभयदेव116 ने लिखा है कि कुल की व्यवस्था का संचालन करने वाला प्रकृष्ट प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति कुलकर कहलाता था। जैन एवं हिन्दू दोनों ही परम्पराओं में इनकी संख्या मुख्यरूप से चौदह स्वीकार की गई है। यद्यपि हिन्दु पुराणों में भी चतुर्दश मनुओं एवं उनके मन्वन्तरों का वर्णन विस्तारपूर्वक पाया जाता है, किन्तु जैनोक्त वर्णनों से वह पर्याप्त भिन्नता रखता है। पहले तो दोनों परम्पराओं में उनकी उत्पत्ति काल के सम्बन्ध में मतभेद हैं और फिर उनके नाम, धाम एवं काल के सम्बन्ध में तो पग–पग पर भिन्नता है।[3]

चौदह कुलकरों के नाम त्रिलोकसार एवं आदिपुराण में निम्नानुसार दिये गये हैं –
प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमन्धर, सीमंकर, सीमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान् यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरूदेव, प्रसेनजित्, नाभिराय।

त्रिलोकसार एवं जम्बूद्वीप पज्ञप्तिसूत्र में नाभिराय के पुत्र ऋषभदेव को पन्द्रहवाँ कुलकर बताया है। लोगविभाग एवं आदिपुराण में नाभिराय के पुत्र ऋषभदेव एवं उनके पुत्र भरत को भी पन्द्रहवें एवं सोलहवें कुलकर कं रूप में स्वीकार किया है, इन सभी कुलकरों के लिये आदिपुराण में मनु शब्द का प्रयोग भी किया गया है।

ये सभी कुलकर अपने पूर्व भव में विदेह क्षेत्रों में उच्च कुलीन महापुरूष थे, वहाँ पर सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले ही भोगभूमि की आयु बांधकर तीसरे काल में भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुये। इन 14 कुलकरों में से कितने ही कुलकरों को जाति समरण था और कितने ही अवधिज्ञान के धारक थे। अतः अपने ज्ञान की विशेषता से प्रजा की समस्याओं का समाधान किया करते थे।

भोगभूमि में सदैव कल्पवृक्षों का प्रकाश रहता था, अतः सूर्यचन्द्रादि विमान दिखाई नहीं देते थे, वे अब कल्पवृक्ष समाप्त होने से दिखाई देने लगे, उन्हें देखकर लोगों को भयंकर भय उत्पन्न हुआ। भोगभूमि में पुत्र–पुत्री का जन्म होते ही माता–पिता का मरण हो जाता था, वे लोग बच्चों का मुख नहीं देखपाते थे, अब बच्चों का मुख देखकर डरने लगे – इसप्रकार की अनेक समस्याओं का समाधान कुलकरों के माध्यम से किया गया। कुलकरों के समय हकार, मकार और धिक्कार (हा, मा, धिक,) – ये तीन नीतियाँ दण्ड के रूप में प्रचलित हुई। ज्यों–जयों काल व्यतीत होता चला गया, त्यों–त्यों मानव के अन्तर्मानस में परिवर्तन होता गया और अधिकाधिक कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई।[4]

कुल परम्परा से हुए एक के पुत्र एक चौदह कुलकरों के सामने उपस्थित विविध प्रकार की समस्याओं/परिस्थितियों और उनके उपदेश द्वारा दिये गये विशिष्ट समाधान को तिलोयपण्णत्ती में 83 गाथाओं में, हरिवंशपुराण में 26 श्लोकों में तथा आदिपुराण में लगभग 100 श्लोकों में बहुत विस्तार से बताया है, यहाँ उस सम्पूर्ण विषय वस्तु को संक्षिप्त चार्ट के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

क्रं.सं.	नाम	उत्पन्न समस्या/परिस्थिति	उपदेश/समाधान
1	प्रतिश्रुति	आकाश में चन्द्र – सूर्य को देखकर प्रजा भयभीत थी।	ये चन्द्र–सूर्य नित्य ही हैं, तेजांग जाति के कल्पवृक्षों का तेज मंद पडने से अब प्रगट हुये हैं, इस प्रकार सूर्य–चन्द्र का परिचय देकरप्रजा का भय दूर किया।
2	सन्मति	सूर्य के होने पर अंधकार और तारा पंक्तियों को देखने से प्रजा में उत्पन्न भय।	तेजांग कल्पवृक्ष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसा ज्ञान कराकर अंधकार ओरा तारागणों का परिचय देखकर भय दूर किया।
3	क्षेमंकर	व्याघ्रादि तिर्यंचों में क्रूर परिणामों को देखकर प्रजा में भय व व्याकुलता।	काल के विकार से ये तिर्यंच क्रूरता को प्राप्त हुये हैं, अतः अब इनका विश्वास कदापि नहीं करना, ऐसा दिव्य उपदेश दिया।
4	क्षेमन्धर	क्रूरता को प्राप्त सिंहादि तिर्यंचों द्वारा मनुष्यों का भक्षण।	उन क्रूर तिर्यंचों से अपनी सुरक्षा के उपायभूत दण्डादि रखने का उपदेश दिया।
5	सीमंकर	कल्पवृक्ष अल्प फलवाले हुये, मनुष्यों मे लोभ की वृद्धि होने से उनके स्वामित्व में परस्पर झगड़ा।	कल्पवृक्षों की सीमाओं के निर्धारण द्वारा पारस्परिक संघर्ष पर रोक।
6	सीमन्धर	कल्पवृक्षों की अत्यन्त हानि के कारण कलह में वृद्धि।	कल्पवृक्षों को चिन्हित करके उनके स्वामित्व का विभाजन।
7	विमलवाहन	गमनागमन में बाधा/पीड़ा का अनुभव।	हाथी, घोड़ा आदि की सवारी तथा वाहनों के प्रयोग का उपदेश।
8	चक्षुष्मान	अबतक सन्तान का मुख देखने से पूर्व ही माता–पिता का मरण हो जाता था, पर अब सन्तान का मुख देखने के बाद मरण होने लगा, अतः अपने ही बालकों को देखकर भयभीत होना।	सन्तान का परिचय देकर भय दूर किया।
9	'यशस्वी	भोगभूमिज युगल बालकों का नाम रखनेतक जीवित रहने लगे।	बलाकों का नामकरण की शिक्षा।
10	अभिचन्द्र	माता–पिता बालकों का बोलना व खेलना देखने तक जीवित रहने लगे।	शिशुओं का रूदन रोकने हेतु उपदेश तथा उन्हें बोलना एवं खेलना सिखाने की शिक्षा।
11	चन्द्राभ	शीत बढ गई, तुषार छाने लगा तथा अतिवायु चलने लगी थी।	सूर्य की किरणों से शीत निवारण की शिक्षा तथा कर्मभूमि की निकटता का ज्ञान।
12	मरूदेव	मेघ, वर्षा, बिजली, नदी, वर्तत आदि के दर्शन।	नौका, छाता आदि के प्रयोग का उपदेश तथापर्वत पर सीढ़ियाँ बनाने की शिक्षा
13	प्रसेनजित्	वर्तिपटल (जरायु) से वेष्टित युगल शिशु का जन्म देखकर माता–पिता भयभीत।	वर्तिपटल (जरायु) दूर करने का उपदेश।
14	नाभिराय	बलाकों का नाभिनाल अत्यन्त लम्बा होने लगा तथा कल्पवृक्षों का अत्यन्त अभाव हो गया। पृथ्वी परऔषधि, धान्य व फलों की उत्पत्ति होन लगी।	नाभिनाल के काटने का उपदेश, आजीविका के उपाय का उपदेश, औषधियों व धान्य आदि की पहिचान तथा उनके प्रयोग की शिक्षा

1. आदिपुराण 3/229 से 232
2. आदिपुराण 3/232
3. आदिपुराण 3/207–209
4. आदिपुराण 3/55–151,164